PAHAL HORIZON
An International Research Journal
Homepage: www.pahalhorizon.com

विकसित भारत के परिप्रेक्ष्य में गीतांजलि श्री और अनामिका के उपन्यास साहित्य में परिवर्तनकारी चुनौतियाँ

चंचल [1] & प्रो. सुनीता शर्मा [2]
[1] शोधार्थी, हिंदी-विभाग, सेंट जॉन्स कॉलेज, आगरा
[2] हिंदी-विभागाध्यक्ष, सेंट जॉन्स कॉलेज, आगरा

शोध-सारांश

जिस प्रकार आत्मा अपने सत्कर्मों के फलस्वरूप अंततः परमात्मा के साथ एकाकार होकर पूर्णता प्राप्त करती है, उसी प्रकार आत्मा रूपी साहित्य सत्कर्म रूपी सत्पथ अथवा मार्गदर्शन के माध्यम से इस सृष्टि को सुंदर, समृद्ध, उन्नत एवं विकास के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचाने में स्वयं को गौरवान्वित एवं सार्थकता से परिपूर्ण अनुभव करता है। जैसे जल के अभाव में मछली अपने प्राण त्याग देती है, वैसे ही साहित्य के बिना विकास की कल्पना पूर्णरूपेण निरर्थक ही कही जा सकती है; अर्थात् साहित्य और विकास के मध्य घनिष्ठ अथवा अन्योन्याश्रित संबंध होता है।
साहित्य किसी समाज अथवा राष्ट्र का वर्तमान होने के साथ-साथ भविष्य की पूर्वपीठिका भी है। साहित्य सुंदर एवं सुखद भविष्य की आशा में रोपा गया ऐसा कोमल पौधा है, जो विकास रूपी वटवृक्ष बनकर न केवल राष्ट्र, अपितु संपूर्ण विश्व को अनुकरण की शिक्षा देते हुए अपनी हरियाली एवं शीतलता प्रदान करता है। साहित्य राष्ट्र को उन बाधाओं, अवरोधों, समस्याओं तथा परिस्थितियों पर विचार-मंथन करने के लिए बाध्य कर देता है, जो राष्ट्र के विकास के पथ को अवरूद्ध किए हुए हैं।
साहित्य सृजनकार समाज अथवा राष्ट्र के भविष्य की चिंता, उसकी उन्नति, प्रगति एवं विकास के लक्ष्य को ध्यान रखकर ही साहित्य-सर्जना करता है। वर्तमान समय में 'गीतांजलि श्री' और 'अनामिका' ऐसी भारतीय महिला साहित्यकार हैं, जिनके साहित्य में विकसित राष्ट्र के लिए परिवर्तनकारी चुनौतियाँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। गीतांजलि श्री और अनामिका के उपन्यास स्त्री के आत्म-संघर्ष एवं पहचान, लैंगिक समानता और स्त्री स्वतंत्रता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सामाजिक विषमता तथा परिवर्तन, आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक विकास, तकनीकी

उन्नति, राजनीतिक कुरूपता, आतंकवाद तथा बदलते समय की अनेक चुनौतियों के जीवंत उदाहरण हैं।
समकालीन स्त्री साहित्यकार इतिहास, समाज और अपने समय की जटिलताओं, समस्याओं और चुनौतियों को नई दृष्टि से पुनर्परिभाषित कर रही हैं। वे केवल स्त्री के हिस्से की दुनिया नहीं लिख रहीं, वरन् स्त्री-दृष्टि से इस संपूर्ण संसार का पुनः सृजन कर रही हैं। विकसित भारत के परिप्रेक्ष्य में गीतांजलि श्री और अनामिका के उपन्यासों में उपर्युक्त सभी परिवर्तनशील चुनौतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

प्रस्तावना

विकसित भारत के परिप्रेक्ष्य में गीतांजलि श्री और अनामिका के उपन्यास साहित्य में परिवर्तनकारी चुनौतियों के विमर्श की चर्चा हिंदी साहित्य जगत् की एक महत्वपूर्ण तथा आविर्भावकारी संवेदना का द्योतक है। गीतांजलि श्री और अनामिका दोनों ही हिंदी कथा साहित्य जगत् की प्रमुख लेखिकाएँ हैं, जिन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्री के अनुभव, समाज और संस्कृति को सकारात्मक स्वरूप में भारतीय जनमानस के समक्ष उभारने का सार्थक प्रयास प्रतिफलित किया है। इन दोनों लेखिकाओं की व्यक्तिपरक तथा सामाजिक चुनौतियों को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि उन्होंने हिंदी साहित्य जगत में स्त्री के मौलिक अनुभव, समाज के वास्तविक यथार्थ तथा भारत के सांस्कृतिक स्वरूप को सकारात्मकता के साथ उभारने का महत्वपूर्ण यत्न किया है। उनके उपन्यासों में स्त्री-जीवन की मौलिक पहचान, समाज में उसकी स्थिति और संस्कृति की जटिलताओं के यथार्थ स्वरूप को दर्शाया गया है, जो वर्तमान समय में विकसित भारत की संकल्पना के परिप्रेक्ष्य में अत्यंत प्रासंगिक है।

बीज शब्द :– साहित्य, राष्ट्र, परिवर्तन, विकास, चुनौतियाँ।

मूल शोध-पत्र

विकसित भारत 2047 की परिकल्पना एवं इसकी संकल्पना को प्रायः आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक प्रगति, वैज्ञानिक उपलब्धि, तकनीकी नवाचार से जोड़कर देखा जाता है। आज भारत तकनीकी दुनिया में तेजी से आगे बढ़ रहा है और तकनीकी दुनिया की इस तेजी ने मानव-जीवन को सरल, सुगम और सहज बनाया है, किंतु भारत के सम्मुख विकसित भारत की संकल्पना को साकार करने की अनेक चुनौतियाँ हैं। वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के साथ-साथ अपनी भारतीय संस्कृति, मानवीय मूल्य, नैतिक चेतना तथा उत्तरदायित्वों को सुरक्षित एवं संरक्षित बनाए रखना सबसे महत्वपूर्ण चुनौती है।
किसी भी राष्ट्र के निर्माण एवं विकास में उसकी भाषा तथा साहित्य का महनीय योगदान होता है। भाषा ही किसी राष्ट्र की उन्नति के मूल में समाहित होती है। आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' जी लिखते हैं–

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल।।"-1

भारतेंदु जी की इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए वहाँ की भाषा को उन्नत बनाना परम आवश्यक होता है। ऐसे में जब भाषा उन्नत होगी तो वहाँ का साहित्य भी उन्नत बनेगा। इस दृष्टि से विचार करें तो भारत में भाषा की समस्या 19वीं शताब्दी के

उत्तरार्द्ध में भी एक बड़ी चुनौती के रूप में दृष्टिगत हुई थी और वह आज भी उसी अवस्था में बनी हुई है। हिंदी आधिकारिक रूप से राजभाषा तो घोषित की जा चुकी हो, किंतु व्यावहारिक रूप में आज भी न तो उसे राजभाषा का ही अधिकार पूर्ण रूप से प्राप्त हुआ है और न वह व्यवहार में ही लाई जा सकी है। विज्ञान, तकनीकी तथा व्यवहार आदि के सभी मानकों पर खरा उतरने के बावजूद भी हिंदी भाषा आज भी राष्ट्रभाषा बनने की प्रतीक्षा ही कर रही है। इस संदर्भ में अनामिका जी अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास 'दस द्वारे का पींजरा' में लिखती हैं कि "देह में भभूत मलकर मुफ्तखोरी करता कोई मुझे दीखा नहीं! विकलांग भी पढ़ते हैं और काम करते हैं! एक 'विशिष्ट' विद्यालय में मैं अतिथि वक्ता होकर गई तो एक जन्मान्ध छात्र से मुझको मिलवाया गया और दंग रह गई मैं देखकर कि झटपट मशीन पर उसने न सिर्फ मेरा बल्कि मेरे देश का नाम भी टाइप कर दिया।

जंगल फलों के बाग और बर्फ के घर में जलती हुई लपटें अमेरिका को एक स्वर्ग की प्रतीति देती हैं। यही विकास तो किया है उसकी अनूठी शिक्षण-व्यवस्था ने जो हर बालक-बालिका को अपनी रुचि के अनुसार काम चुनने और तदनुकूल शिक्षा-प्रशिक्षा ग्रहण करने की तमाम सहूलियतें जुटाती है और सारा काम-काज, पढ़ाई-लिखाई मातृभाषा में करने की सुविधा भी! काश, अपने देश की भी एक उभयनिष्ठ भाषा होती–जैसे हिंदी ! भारत में सभी यह भाषा समझते हैं–देश की अधिकांश भाषाओं का मायका दीखती है यह और उर्दू की बाल-सखा !"-2 अग्रलिखित अभिकथन में लेखिका की चिंता स्पष्ट रूप से भारत की भाषा को लेकर है। लेखिका का मानना है कि वर्तमान समय में जितने भी विकसित देश हैं, उन सभी ने विकास की इस यात्रा को अपनी मातृभाषा के रथ पर आरूढ़ होकर ही पूर्ण किया है। अतः भारत यदि इस यात्रा को पूरा करना चाहता है, तो उसे भी अपनी भाषाओं को संवृद्ध बनाना होगा, और इस दृष्टि से हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जो समस्त भारतीय भाषाओं का नेतृत्व करने हेतु पूर्णरूपेण सक्षम है।

राष्ट्र-निर्माण की अवधारणा के संबंध में वे आगे लिखती हैं कि "वैज्ञानिक-तकनीकी प्रगति और व्यवस्थापन में भी अमरीकियों का जवाब नहीं था और इनकी जो विशेषताएँ मैं अपनी गठरी में बाँधकर घर ले जाना चाहती थी–उनमें अग्रिम थे राष्ट्र-निर्माण का उत्साह और संवाद में आस्था! कोई काम छोटा या हेय नहीं माना जाता था। और औरतें कुछ भी करने को स्वतंत्र थीं–शिक्षण-अभिभाषण से लेकर सार्वजनिक साफ-सफाई का काम एकदम अकुंठ भाव से करने को स्वतंत्र ! हजार लोगों के छोटे-से गाँव में भी उत्कृष्ट पुस्तकालय-वाचनालय थे, समाजसेवी संस्थान भी! सबमें औरतों की विशिष्ट भागीदारी थी! पुरुष घर के काम में मदद तो नहीं करते थे, पर परिवार के साथ शाम का समय हँसी-खुशी बिताते थे जरूर ! हमारे देश में यात्रा करना विपदा का प्रतीक था! बाढ़, अगजनी, अकाल, देशनिकाला, जाति-बहिष्कार की घटनाएँ यात्राओं का उत्स हुआ करती थीं, पर यहाँ दुनिया देखने के भाव से लोग परिवार के साथ छुट्टियाँ मनाने इधर-उधर जाते थे! कितना अच्छा था यह !"-3 इस कथन में विकसित राष्ट्र अमेरिका के विकसित हो पाने के मूल भाव को उकेरते हुए लेखिका ने स्त्रियों की भूमिका को रेखांकित किया है। वे अमेरिकी महिलाओं के व्यक्तित्व-कौशल के माध्यम से स्पष्ट करना चाहती हैं कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति में उस राष्ट्र की महिलाओं की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। जहाँ एक ओर भारत की महिलाओं को पर्दे के अंदर की वस्तु मानकर उसे भोजनालय के इर्द-गिर्द ही रखना श्रेयस्कर माना जाता है, वहीं अमेरिका में राष्ट्रीय महत्व के प्रत्येक कार्य में महिलाएँ महत्वपूर्ण भूमिका में होती हैं। व्यक्तिगत से लेकर सामाजिक व राष्ट्रीय महत्व के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका अग्रणीय रहती है। खेल, चिकित्सा, विज्ञान, राजनीति, कला, संस्कृति, सुरक्षा आदि सभी क्षेत्रों में जिन देशों में महिलाओं का स्थान पुरुषों के समतुल्य ही है, वे ही देश वर्तमान समय में विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में हैं। इसके विपरीत सदियों से

भारत में स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा कमतर ही मूल्यांकित किया जाता रहा है। इस संबंध में गीतांजलि श्री 'माई' उपन्यास में लिखती हैं - "इसी बात का तो हमें बचपन से रंज था। "बोला करो माई, लड़ा करो, जो होना चाहती हो वह होओ।" इस तरह तो माई थी ही नहीं– झुकी, मूक, डरपोक छवि, जिसमें सिर्फ दूसरों के इशारों पे हरकत होती। हम दया से भर जाते। चिढ़ जाते।

और कोई था जिसे हम माफ़ नहीं कर पाते जिसने किसी को माई बनने दिया। क्योंकि माई 'न बनने' का पर्याय लगा। क्यों नहीं माई को असल, पूरा बनने दिया ?

हम कभी माई नहीं बनेंगे। मैं कभी 'न बनी' नहीं रहूँगी, यह घोर यकीन, इसी का गहरा संग्राम, यही हमारा जीवन था।"-4 इस कथन से स्पष्ट है कि भारतीय नारी को परंपराओं, रूढ़ियों तथा बंधनों के ऐसे जाल में कसकर रखा गया कि वह अपनी शक्ति और सामर्थ्य को कभी प्रदर्शित ही नहीं कर पाई। अपाला, घोषा, मैत्रेयी, गार्गी, अनुसूया आदि के देश भारत की नारी युगों-युगों से उपेक्षित रही है। उसके ज्ञान, बल, बुद्धि, विवेक आदि को कभी मुखरित होने का अवसर ही नहीं मिला परिणामस्वरूप आज भी भारत विकासशील देशों की श्रृंखला में ही है। जबकि आज की परिस्थितियों में बदलाव का ही परिणाम है कि आज का भारत उन सभी परिस्थितियों से धीरे-धीरे उबरने लगा है, जिनके कारण देश की प्रगति अवरुद्ध थी। आज की बालिकाएँ स्वयं को निरीह नहीं मानतीं, वे प्रत्येक क्षेत्र में आगे आकर अपनी उपस्थिति से राष्ट्र उन्नयन की सहयोगी बन रही हैं।

राष्ट्रीय उत्थान के जिन विषयों के महत्व को संपूर्ण विश्व ने एक मत होकर स्वीकार किया है, उन विषयों में तीसरे लिंग की स्वीकार्यता का उपागम भी राष्ट्र उन्नयन के प्रयोजन के रूप में दृष्टिगत है। एक ऊर्जा है जिसका उपयोग करके राष्ट्रीयता के उन्नयन को धार दी जा सकती है। इस संबंध में गीतांजलि श्री 'रेत समाधि' उपन्यास में किन्नर पात्र 'रोज़ी' के मुख से कहलवाती हैं– "मुझे पासपोर्ट से क्या ? न होने के फ़ायदे हैं। हमारी गिनती न मुस्लमीन किरस्तान में न यहूदी पारसी हिन्दू में न आदमी औरत में, हमारा नाम नहीं लेना, हमें पहचानना नहीं। हमें असल क्या, तसव्वुर से ही गायब रखना चाहते हैं। तो हम तो कहीं भी घुस लें।"-5 इस कथन में स्पष्ट कहा गया है कि तृतीय लिंग को समाज ने स्वीकार्यता ही नहीं दी। न कभी सम्मान मिला, न उन्हें मनुष्यों के बीच की स्वीकार्यता मिली। भले ही वे स्त्री या पुरुष नहीं थे, तथापि मनुष्य के द्वारा जनित होने के नाते यदि उन्हें समाज से बहिष्कृत न समझा गया होता तो उनकी ऊर्जा का भी सदुपयोग किया जा सकता था। वे भी पढ़-लिखकर अपनी बौद्धिक क्षमताओं का योगदान राष्ट्र के निर्माण में दे सकते हैं किंतु शैक्षणिक संस्थानों के प्रवेश फॉर्म में तो केवल दो ही लिंगों के विकल्प मिलते हैं स्त्री और पुरुष, किंतु जब कोई नपुंसक बालक पढ़ना चाहे तो वह किस विकल्प पर स्वयं को पंजीकृत करें; यद्यपि कई स्थानों पर उसे स्त्री के रूप में परिगणित कर लिया जाता है, तथापि वास्तव में वह स्त्री तो नहीं है, फिर उसकी गणना स्त्रियों में होना भी उसकी आत्मा को खटकता है। सार्वजनिक शौचालय हो या कोई अन्य संस्थान सर्वत्र एक लिंग उपेक्षित ही रहा है। परिणामस्वरूप उसकी ऊर्जा व्यर्थ ही होती रहती है। अनेक अवसरों पर समाज में यह तीसरा लिंग स्वयं को अपमानित होते हुए भी पाता है, ऐसी स्थितियों में अनेक अवसरों पर वह उग्र होकर विध्वंसक स्वरूप भी धारण कर लेता है, तथापि यदि इस तृतीय लिंग को उचित अवसर, अनुकूल वातावरण तथा अपेक्षित संसाधन उपलब्ध कराए जाएँ तो वह भी अवश्य ही राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान देगा।

इस संबंध में 'रेत समाधि' उपन्यास का यह कथन भी उल्लेखनीय है "न मेरे लिए फ़िल्म, न साहित्य, न कला, न कपड़े। जो आप उतार दें, उस उतरन में हम उतर लें। अपनी कहीं

गिनती नहीं। झील में बाजी डाल आओ तो किसी को पता नहीं चलेगा कि एक कम है।"-6 इस कथन में किन्नर समाज की उस व्यथा को रेखांकित किया गया है, जिससे यह समाज प्रतिदिन दो-चार होता है। वह इसी समाज में पैदा होकर भी इस समाज से सर्वथा उपेक्षित रहता है। उसके जीने या मरने से भी किसी को सरोकार नहीं होता। परिणामस्वरूप समाज की एक सशक्त ऊर्जा सदैव व्यर्थ होती रहती है। वर्तमान समय में इस व्यर्थ होती ऊर्जा के उद्देश्यपरक उपयोग के माध्यम से भी राष्ट्र-निर्माण की अवधारणा को गति देने के संस्कार को जीवंत करने की आवश्यकता है।

आज का भारत अपनी उन्नति के मार्ग में जिन कारणों को बड़ी बाधा के रूप में पाता है, उनमें सांप्रदायिक वैमनस्य, सांप्रदायिक दंगे तथा विश्वासहीनता का स्थान प्रमुख है। लेखिका ने अपने उपन्यास में इस बड़े कारण की ओर बड़ी ही संजीदगी के साथ संकेत किया है। उपन्यास का एक संवाद द्रष्टव्य है-

> "औरत को हर कुछ पाने के लिए चिल्लाना पड़ता है। आदमी हर कुछ गँवाने पर चिल्लाता है।
> अब आप तो कुछ ज़्यादा ही...
> मोटे तौर पर यही बात है। हिंदू-मुसलमान की भी यही बात है। मोटे तौर पर। यह सारी बातें कमज़ोर और ताक़तवर वर्ग की बातें हैं।
> मुसलमानों में सांप्रदायिकता भरी है।
> हिंदुओं में भी भरी है।
> मगर एक इनसैक्योरिटी और डर से पैदा हुई है, दूसरी ताक़त और अहंकार से। दोनों के चिल्लाने का फ़र्क देखना होगा। दोनों की गलतफ़हमियों से जूझना होगा मगर एक से ज्यादा सहानुभूति हो ही जाएगी, अगर हममें संवेदना बाकी है।
> हममें तो है, मगर उनमें नहीं।
> किनमें ?
> उन मुसलमानों में।
> हम हिंदू या मुसलमान नहीं हैं।
> मैं तो नहीं हूँ।
> मैं हूँ, मगर वैसा नहीं।
> कैसा नहीं?
> उनके जैसा। जो उधर रहते हैं। दंगे करवाते हैं। खून बहाते हैं।
> दंगे का मतलब जानते हो? श्रुति उठ गई। असल दंगे वहाँ हो रहे हैं, जहाँ खून बह रहा है।"-7

उपर्युक्त संवाद में लेखिका ने उस मनोवृत्ति को स्पष्ट किया है, जिसके कारण समाज का स्वरूप विकृत होता रहा है। स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं, किंतु फिर भी वे पूर्णता को प्राप्त नहीं हो पा रहे हैं; क्योंकि पुरुष स्त्री को अपने संकेतों पर गतिमान रखने हेतु प्रयासरत रहता है। जब स्त्री स्वयं को किसी क्षेत्र में आगे ले आती है तो पुरुष का पुरुषत्व आहत हो जाता है। इसी प्रकार कई बार स्त्री अपने गुणों को पुरुष की कमजोरी मानकर उसके स्नेह, सद्भाव, संवेदना आदि की उपेक्षा कर स्वयं को श्रेष्ठ बताने के प्रयास में इतनी आगे निकल जाती है कि पुरुष अवसाद की स्थिति में स्वयं को या तो विपथ पर ले आता है अथवा अपनी ऊर्जा को सृजन में लगाने की अपेक्षा विध्वंस में लगाने लगता है। यह सब होता है विश्वास हीनता और असुरक्षा के भय के कारण। यदि एक पुरुष एक स्त्री के महत्व को उचित सम्मान दे और एक स्त्री एक पुरुष के हृदय की वास्तविकता के स्वरूप को पहचानकर उचित आचरण करे, तो निश्चित ही स्त्री और पुरुष मिलकर राष्ट्र निर्माण में सहयोगी सिद्ध

हो सकते हैं। इसी प्रकार भारत की वैश्विक संवृद्धि में बड़ी बाधा सांप्रदायिक वैमनस्य है। एक समुदाय को दूसरे पर भरोसा नहीं है, तो दूसरा स्वयं को पहले से असुरक्षित मान बैठा है। पूजा पद्धति एवं ईश्वर को प्राप्त करने के साधनों का अनुगमन तथा अपने मार्ग की श्रेष्ठता दर्शाने का आचरण कब खूनी संघर्ष में बदल जाए, इस बात का पता ही नहीं चलता। जबकि किसी भी पूजा पद्धति को मानने या न मानने से कोई अच्छा या बुरा नहीं होता। व्यक्ति को उसका आचरण एवं व्यवहार ही श्रेष्ठ बनाता है। ऐसे में भय और अविश्वास से उत्पन्न दंगे राष्ट्र की उन्नति में बाधक ही बनते हैं। इस दृष्टि से लेखिका का मत है कि आपसी समझ ही इन दंगों का स्थाई उपचार है। धार्मिक उन्माद जन और धन का विनाशक तो बनता ही है साथ ही राष्ट्रीय अस्मिता को भी नष्ट कर देता है।

कई बार यह मौत का खेल केवल मनोरंजन के लिए खेला जाता है। ऐसा करने वाले मानसिक बीमार होते हैं। भले ही कारण कोई भी हो, हानि तो राष्ट्र को ही उठानी पड़ती है। 'खाली जगह' उपन्यास में लेखिका ने इसी मानसिक विकृति से उत्पन्न घातक चिंतन के दूरगामी परिणाम की ओर र संकेत करते हुए बम धमाके के शिकार एक बच्चे के बाल मन पर हुए नैसर्गिक प्रभाव को इस प्रकार प्रदर्शित किया गया है– "कुछ हो जाता है जीवन के किसी मुकाम पर, जन्म या मौत के पहले या बाद में या बीच में, जो बन जाती है हमारी जुबान और फिर हम उसमें खुद को उँडेलते हैं और बहते हैं।

जल उठे मेरे हाथ मेरी आँख मेरे होंठ और मैं चाहता रहा उसे बेतहाशा बेतहाशा जलाऊँ उन्हीं से।

बस, यही करता रहा मैं अब तक, बताता गया मैं उसे, कि ऊपर की हरकतों में लुप्त, बम सँजोए भीतर। हर वक़्त, हर भीड़, हर चुप में। कभी जो भूला हूँ उसे ! पढ़ रहा हूँ कुछ पन्ने पर और मन पर अंकित हो रहा है– बौम्ब। फ़िल्लम, सभा, जलसा, पार्टी, बकबक, झकबक, बुलबुला मेरे होंठों पर– बौम्ब। कोई कहे कुछ, मेरी इच्छा कि कहूँ– बौम्ब। माँ कहे बोलो बेटा, मैं बोलना चाहूँ– बौम्ब !

हाँ बन रही होती है एक नई भाषा, अन्दर ही अन्दर, खदक बिदक, और देर तक कोई नहीं समझता। माँ भी नहीं।

"हैं ... क्या कहा ... कुछ कहा ... हाँ बोलो बेटा ... हाँ हाँ बेटा बोल मम !"

उठा लिया गोद में मुझे और चूम लिया कि बेटा बोल मम।

नहीं बेटा नहीं बोला मम। बेटे की जुबान अलग हो चली है। खदक बिदक बम !"-8

इस कथन से स्पष्ट है कि कई बार की कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं कि वे सदैव व्यक्ति के मस्तिष्क पर अंकित बनी रहती हैं। यहीं से प्रारंभ होता है क्रिया की प्रतिक्रिया का दौर। इस प्रकार कुछ घटनाएँ व्यक्ति के संपूर्ण जीवन को प्रभावित कर देती हैं और फिर वह उस प्रभाव से समाज को प्रभावित करता है और फिर समाज राष्ट्र को। इस प्रकार कुल मिलाकर प्रभावित राष्ट्र ही होता है। अतः राष्ट्र निर्माण के मार्ग में असंख्य बाधाएँ हैं जिन्हें समाप्त करने के लिए समवेत रूप से सक्रिय सहभागिता की आवश्यकता होती है।

माँ, मातृभाषा और मातृभूमि ये तीनों एक-दूसरे के सगुण पर्याय हैं। यहाँ यह समझना भी आवश्यक है कि मातृभूमि और कर्मभूमि दोनों का स्थान समतुल्य ही है। इस दृष्टि से मातृभूमि और कर्मभूमि दोनों के प्रति व्यक्ति का कर्तव्य समान ही होता है। इसी संदर्भ को रेखांकित करते हुए लेखिका ने 'दूर देश के परिंदे' उपन्यास में बड़ा ही मार्मिक संवाद प्रस्तुत किया है। इस संवाद का एक अंश दृष्टव्य है– "जिस भारत ने मुझको इतना सिखाया, मेरा प्रज्ञा-कोष और अनुभव-कोष इतना समृद्ध किया, वह मेरे लिए पराया कैसे होता। शुरू-शुरू में भारत मुझे कठिन पाठशाला लगा ज़रूर, पर अब वह मेरा घर था। क्रिस्तोफ

की चिट्ठी आई थी, उसने भी यही लिखा था कि भारत के चप्पे-चप्पे तक पैदल जाकर, उसके सामान्य लोगों से अन्तरंग गपशप साधे बिना यानी सिर्फ़ इंडोलॉजी के प्राचीन ग्रन्थों के आश्रय भारत की आत्मा पकड़ में नहीं आती।"-9 इस कथन के माध्यम से स्पष्ट है कि भारत भूमि में वह तासीर है, जो प्रत्येक आगंतुक को अपना बना लेती है। नि:संदेह इस प्रकार के गुण ने ही भारत को विश्वपटल पर एक सम्मानजनक स्थान प्रदान किया है।

हिंसा किसी भी समस्या का समाधान नहीं हो सकती, इस तथ्य के समर्थन में अनामिका के उपन्यास 'तृन धरि ओट' में अत्यंत सहजता के साथ प्रस्तुत किया गया है– "कल अयोध्या से कुछ सैनिक आये थे–फिर से बवालियों का सर उसी तरह कुचलने लगे जैसे पहले कुचला था, पर मैंने अपनी ज़िन्दगी में इतनी मार-काट देखी है, और उसका नतीजा भी कि मुझे ऐसा लगता है कि हिंसा से कोई सिलसिला नहीं टूटता, शिक्षा से टूट सकता है। ऋषिवर वाल्मीकि का जीवन इसका साक्षात् उदाहरण है। इसलिए मैं नयी पीढ़ी के अधिकांश बच्चों में शान्ति और प्रेम के पाठ प्रसारित करने में लगी हूँ और मातंगी के साथ ललिता देवी और वाल्मीकि की वरद् छाया मेरे कुछ प्रयोग सफल भी कर गयी है।"-10 यहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भले ही मनुष्य यह समझता हो कि हिंसा से प्रत्येक समस्या को हल किया जा सकता है, किंतु ऐसा नहीं है; क्योंकि रक्तरंजित हिंसा भले ही तात्कालिक दृष्टि से समस्या को समाप्त कर दे, परंतु समस्या के मूल को समाप्त नहीं किया जा सकता। वास्तविकता में किसी भी समस्या को जड़ से उखाड़ने के लिए एवं उसका समूल नाश करने के लिए सबसे सशक्त अस्त्र तो शिक्षा ही है। शिक्षा व्यक्ति को विवेकवान, विनम्र तथा संवेदनशील बनाती है। अतः शिक्षित समाज ही विकसित राष्ट्र की संकल्पना को साकार कर सकता है।

समाज में व्याप्त बुराई में भी कहीं न कहीं कुछ अच्छाई तो अवश्य होती है। इस अच्छाई का स्वरूप इतना सूक्ष्म होता है कि व्यक्ति उसे बड़ी आसानी से नहीं पकड़ पाता। जैसे बुराई के सबसे बड़े प्रतीकों में रावण को लें, तो उसके जीवन की श्रेष्ठता यह है कि वह अपने इष्ट के प्रति अत्यंत निष्ठावान था। यह बात सत्य है कि उसे इस बात का अभिशाप था कि वह बिना किसी स्त्री की इच्छा के उसे स्पर्श भी नहीं कर सकता था, क्योंकि रावण संहिता के एक प्रसंग के अनुसार रावण के सौतेले बड़े भाई कुबेर (विश्रवा की पहली पत्नी इलविला के पुत्र) के पुत्र नलकुबेर की पत्नी अप्सरा रंभा के साथ जबरन योनाचार किया, जबकि वह रावण के भतीजे की पत्नी होने के नाते पुत्रवधू थी; अतः रंभा ने उसे शाप दिया कि यदि वह किसी स्त्री की इच्छा के विरुद्ध उसे स्पर्श भी करेगा तो उसके प्रत्येक सिर के सौ टुकड़े हो जाएँगे। इस भय से उसने कभी सीता के साथ जबरदस्ती नहीं की; किंतु इस घटना की अच्छाई यह है कि मृत्यु का भय व्यक्ति को दुराचरण से भी दूर रखने में सक्षम है। इसी प्रकार प्रत्येक बुरी बात में कुछ न कुछ अच्छाई होती ही है, जिसे खोजने की आवश्यकता होती है। यह खोज व्यक्ति-निर्माण से राष्ट्र-निर्माण तक की यात्रा का मार्ग प्रशस्त करती है। इस संबंध में 'दस द्वारे का पींजरा' उपन्यास का निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय है - "हर बुराई में अच्छाई का एक भ्रूण तो होता है... एक भरपूर अंडा... अच्छी तरह अंडा सेने की कला विकसित करनी होती है... एक संघर्षविहीन जीवन से ज्यादा बुरा चरित्र के विकास के लिए कुछ हो ही नहीं सकता।"-11 इस कथन में स्पष्ट है कि बुराई में छिपी अच्छाई की खोज करने की कला का विकास करना वर्तमान समय में प्रत्येक नागरिक का परम कर्तव्य है। ऐसा करने से ही विकसित राष्ट्र की संकल्पना को साकार किया जा सकता है। चूँकि मानव जीवन संघर्षों की ही एक परिपक्व कहानी है। संघर्ष से घबराकर भाग जाना किसी भी राष्ट्र के नागरिक के लिए श्रेयष्कर नहीं हैं। अतः राष्ट्र के चहुँमुखी विकास के लिए भारत के प्रत्येक नागरिक को जीवन के संघर्षों के समक्ष डटकर

खड़े रहने की आवश्यकता है। इस संबंध में सुप्रसिद्ध कवि श्री कृष्ण कुमार 'कनक' जी की कविता 'विदुर की शंका' में कहा गया है-

"जो भी हो वह अच्छा ही हो,
उस ईश्वर से कामना करो।
यह जीवन भी तो रण ही है,
इस रण का तुम सामना करो।"-12

यहाँ कवि ने स्पष्ट रूप से मानव जीवन को युद्ध क्षेत्र की संज्ञा दी है। अतः राष्ट्र-निर्माण के लिए प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राष्ट्रीय सरोकारों के साथ समन्वय स्थापित करते हुए राष्ट्र-निर्माण में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

इस आलेख में उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि गीतांजलि श्री और अनामिका के उपन्यासों में विकसित भारत के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तनकारी चुनौतियों को स्पष्ट रूप से उजागर किया गया है। इन उपन्यासों में स्त्री के आत्म-संघर्ष, लैंगिक समानता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सामाजिक विषमता, सांप्रदायिक वैमनस्य, हिंसा, और शिक्षा के महत्व को रेखांकित करते हुए राष्ट्र के निर्माण की संकल्पना को साकार करने के विषयों पर महत्वपूर्ण स्थान विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस आलेख में यह भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि वर्तमान समय की इन गंभीर चुनौतियों का सामना करने के लिए समाज में शिक्षा, संवेदना, और समन्वय की आवश्यकता समझना तथा उसके अनुरूप आचरण तथा व्यवहार में उतारने से ही राष्ट्र-निर्माण की महत्वाकांक्षा को पूरा किया जा सकता है।

संदर्भ सूची (HSS Formate)

[1] डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी : हिंदी साहित्य का सरल इतिहास ; पृष्ठ संख्या - 88, ओरियंट ब्लैकस्वा ॅन प्राइवेट लिमिटेड, हिमायत नगर, हैदराबाद 500029 (तेलंगाना), भारत ; संस्करण : 2022 ई.
[2] आ. अनामिका : दस द्वारे का पींजरा ; पृष्ठ संख्या - 107, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली -110002 ; दूसरा संस्करण : 2023 ई.
[3] आ. अनामिका : दस द्वारे का पींजरा ; पृष्ठ संख्या - 106, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली -110002 ; दूसरा संस्करण : 2023 ई.
[4] आ. गीतांजलि श्री : माई ; पृष्ठ संख्या - 116, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली -110002 ; छठा संस्करण : 2023 ई.
[5] आ. गीतांजलि श्री : रेत समाधि ; पृष्ठ संख्या - 238, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली -110002 ; दसवाँ संस्करण : जुलाई 2022 ई.
[6] आ. गीतांजलि श्री : माई ; पृष्ठ संख्या - 239, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली -110002 ; दसवाँ संस्करण : जुलाई 2022 ई.
[7] आ. गीतांजलि श्री : हमारा शहर उस बरस ; पृष्ठ संख्या - 111, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली -110002 ; तीसरा संस्करण : 2022 ई.
[8] आ. गीतांजलि श्री : खाली जगह ; पृष्ठ संख्या - 86, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली -110002 ; तीसरा संस्करण : 2022 ई.
[9] आ. अनामिका : दूर देश के परिंदे ; पृष्ठ संख्या - 172, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली -110002 ; प्रथम संस्करण : 2026 ई.
[10] आ. अनामिका : तृन धरि ओट ; पृष्ठ संख्या - 22, वाणी प्रकाशन, 4695, 021-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 ; प्रथम संस्करण : 2023 ई.

[11] आ. अनामिका : दस द्वारे का पींजरा ; पृष्ठ संख्या - 106, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली -110002 ; दूसरा संस्करण : 2023 ई.
[12] मा. कृष्ण कुमार 'कनक' : उलझाता छविजाल तुम्हारा ; पृष्ठ संख्या - 23, निखिल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 37, 'शिवराम कृपा' विष्णु कालोनी, शाहगंज, आगरा- 282010 (उ.प्र.) ; प्रथम संस्करण : 2020 ई.